WERHOUSE

PC has achieved
ictions. It is
er utility. The
ie beneficiary of
ice. The public
ofit earner
porations. The
implementing
power
t. Above all, the
s, in
the world's best
anisations.
5, NTPC has
o an electrifying

ty : Installed and
30 MW — to be
t 20,000 MW by
Plan (1995).

Transmission Network : Constructed and commissioned over 9,500 circuit kms of Extra High Voltage AC lines — with an approved transmission system of 20,300 circuit kms.

Capacity Utilisation : During 1988-89, the operating stations of the Company generated 27, 294 MUs as compared to 19,378 MUs in the previous year.

The average plant load factor (PLF) achieved was 68.4% as against the national average of 55%. During 1988-89, the capacity addition was 2,208 MW as against the target of 1,420 MW — representing 45.19% of the total capacity addition and 53.63% of the thermal capacity addition in the entire country.

Turnover : The gross turnover increased from Rs. 862.21 crore in 1987-88 to Rs. 1,274.84 crore in 1988-89, representing an increase of 47.9%.

Internal Resource Generation : Net Profit shot up from Rs. 4.57 crore in 1982-83 to Rs. 330.82 crore in 1988-89.

Now, NTPC is geared for still more rapid growth. Contributing one-third of the total additional power capacity to be created in the next five years. Helping establish a national grid to unify the country's five electricity regions. Above all, making available to India's millions the benefits of ever increasing power generation.

National Thermal Power Corporation Ltd.

(A Government of India Enterprise)

NTPC Bhawan, SCOPE Complex, Lodi Road, New Delhi-110 003.

Sobhagya/353/89

Investors in Usha Rectifier in the past have received rich returns and have seen their investment grow exponentially. A thousand rupees invested in Usha Rectifier in 1982 (when it was private limited) has grown to Rs 2,60,000 in just 7 years. A thousand rupees invested in December 1984 (when it became a listed company) has grown to Rupees 55,600 in less than 5 years. For details please write to 3 Cama Place, New Delhi

(*Ex-Rights as on 19.9.89 on DSE)

PUBLIC ISSUE OPENS ON OCTOBER 11

MANAGERS TO THE ISSUE:
SBI CAPITAL MARKETS LTD. • CANBANK FINANCIAL SERVICES LTD.
CITIBANK N.A. • INDIAN BANK • BOB FISCAL SERVICES LTD.
ALLAHABAD BANK • CENTRAL BANK OF INDIA • BOI FINANCE LTD.
CORPORATION BANK • NEW BANK OF INDIA • ANDHRA BANK
H.L. FINANCIAL CONSULTANTS & MANAGEMENT SERVICES PVT. LTD.
MEHTA FINANCIAL CONSULTANT & MANAGEMENT SERVICE (P) LTD.
J.M. FINANCIAL & INVESTMENT CONSULTANCY SERVICE LTD.
H.B. FINANCIAL CONSULTANTS (P) LTD. • UNITED BANK OF INDIA
VIJAYA BANK • PUNJAB NATIONAL BANK • UCO BANK
INDIAN OVERSEAS BANK

CO-MANAGERS TO THE ISSUE
STATE BANK OF HYDERABAD • STATE BANK OF PATIALA
STATE BANK OF TRAVANCORE • PUNJAB & SIND BANK
STATE BANK OF MYSORE • THE FEDERAL BANK LTD



25 SILVER JUBILEE

USHA RECTIFIER

श्रीः ।

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम् ।

श्रीगन्धर्वराजपुष्पदन्तविरचितम् ।



अर्गलपुरनिवासिराधाकृष्णशर्मणा विद्वत्सहायेन
अन्वयपदभाषाव्याख्यानसहितम् ।



गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक–" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण–बंबई.

संवत् १९९२, शके १८५७.

मुद्रक और प्रकाशक–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक–" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्–प्रेस, कल्याण–बंबई.

सन् १८६७ के आक्ट २५ के मुजब रजिष्टरी सब हक्क प्रकाशकने अपने आधीन रक्खा है.

श्रीः

शिवमहिम्नः स्तोत्रम् ।

ॐ नमः शिवाय ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे हर ! ते महिम्नः परं पारम् अविदुषः जनस्य कृता स्तुतिः यदि असदृशी स्यात् तर्हि किमाश्चर्यं ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि अवसन्नाः स्युः । अथ सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् अवाच्यः तर्हि ममापि स्तोत्रे एष परिकरः निरपवादः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—हे (यह पद संबोधनका वाची है अर्थात् जिससे बात करै उसे अपनेसोंही माननेका हेतु) दुःखदूरकरनहार ! आपकी महिमाका परला पार अर्थात् निर्गुण स्वरूपका वह तट जहां पहुँच नहीं किसीकी अपण्डित साधारण मनुष्यकी करी हुई स्तुति जो जैसी चाहिये तैसी न हुई तो क्या अचम्भा हुआ क्योंकि ब्रह्मादिकोंकी भी वाणी आपके विषे स्तुति करनेमें रुकजाती है अर्थात् चलती नहीं,

इसके अनन्तर सबके सब अपनी बुद्धिके चलनेकी सीमातक स्तुति करते हुए निर्दोष हैं तो मेरेभी स्तोत्रमें यह रचना प्रकार अपवाद अर्थात् बुराईके योग्य नहीं है ॥ १ ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः यं महिमानं श्रुतिरपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः अर्वाचीने पदे कस्य मनः वचः न पतति सर्वेषां पतत्येव ॥ २ ॥

अस्यार्थः—हे षडैश्वर्यसंपन्न ! (अर्थात् जिसमें छः होंय बल, वैभव, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य वह भगवान् है) तुम्हारी महिमा वाणी और मनके मार्गसे पृथक् है जिस महिमाको वेदभी निश्चय किये विना चकित हो अर्थात् विस्मयमें होकर कहता है वह महिमा किससे स्तुति अर्थात् वर्णन की जाती है अर्थात् न किसीसे और कितने प्रकारके गुण हैं किसका विषय है वेभी नहीं कहेजाते परन्तु इस तटपर अर्थात् संसारके पदार्थोंपर किसके मन वाणी नहीं पहुँचते, श्रीपुष्पदन्ता-चार्यका भावार्थ यह है कि, सबके पहुँचते हैं ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन्! मधुस्फीताः वाचः परममृतं निर्मितवतः तव किं सुरगुरोः अपि वाक् विस्मयपदं धत्ते ? अहं तु एतां वाणीं हे पुरमथन ! भवतः गुणकथनपुण्येन पुनामि इत्यस्मिन्नर्थे मम बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

अस्यार्थः—हे ब्रह्मन् अर्थात् हे सर्वोत्तम ! मधुसे मीठी परम अमृतसी वाणीको निर्माता अर्थात् बनानेवाले तुम सो तुम्हैं क्या बृहस्पतिजीकी भी वाणी आश्चर्यका स्थान दिखावेगी अर्थात् प्रसन्न करेगी ? वह नहीं होगा—क्योंकि उत्तमोत्तम वाणीके कर्ता आप हैं । कदाचित् कहो कि, तू क्यों श्रम करता है ? तहां वह विनय है कि, मैं तो इस अपनी वाणीको हे त्रिपुरान्तक ! आपके गुण गानेके पुण्यसे पवित्र करता हूँ इस आशयसे मेरी बुद्धिने स्तुति करना निश्चय किया है॥ ३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे वरद ! इह एके जडाधियः तवैश्वर्यं विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधते । कथंभूतं तवैश्वर्यम् ? जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् । पुनः कथंभूतम् ऐश्वर्यम् ? त्रयीवस्तु, पुनः कथंभूतम् ऐश्वर्यम् ? गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तम् । कथंभूतां व्याक्रोशीम् ? अभव्यानां रमणीयाम्, पुनः कथंभूतां व्याक्रोशीम् ? अस्मिन् सर्वज्ञादिगुणे अरमणीम् ॥ ४ ॥

अस्यार्थः—हे वरदायिन् ! इस लोकमें कोई मन्दबुद्धि आपके ऐश्वर्यका खण्डन करनेको निंदा करते हैं, कैसा वह आपका वैभव कि, संसारका उत्पन्न पालन नाशकारक है, फिर कैसा है वही ऐश्वर्य कि तीनों वेदोंका तत्त्व और फिर कैसा है वही ऐश्वर्य कि, गुण—सत्त्व, रज, तमसे तीन स्वरूप धारे हैं जिसने और कैसी है वह निन्दा कि, अकल्याणी पापी निन्दकोंके मनभावनी परंतु वास्तवमें फिर कैसी है वह निंदा कि, इन सर्व गुणोंमें यह जो सर्वज्ञादिगुणयुक्त आपके ऐश्वर्यमें वह तो अच्छी नहीं है अर्थात् बहुतही बुरी है ॥ ४ ॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

अन्वयः—खलु सः धाता किमाधारः किमीहः सन् किंकायः सन् किमुपायः सन् किमुपादानः सन् त्रिभुवनं सृजति इति

अयं कुतर्कः अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुःस्थः काँश्चित् हतधियः जगतः मोहाय मुखरयति ॥ ५ ॥

अस्यार्थः–निश्चय करि कहो कि, वह विधाता कहाँ बैठकर और किस प्रकारसे कौनसी कायासे और किस युक्तिसे और कौनसे कारण अर्थात् कौनसी वस्तुसे और किसलिये तीनों लोकोंको उत्पन्न करै है-इतने कुतर्क नहीं तर्कके योग्य अर्थात् अनिर्वचनीय ऐश्वर्य आपके विषे समय अर्थात् सावकाश न पाकर डामाडोल होते हुये कोई नष्टबुद्धि मीमांसकोंको जगत्के मोहके हेतु वाचालतासे भ्रममें डालता है ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

अन्वयः–हे अमरवर ! अवयववन्तः अपि लोकाः किम् अजन्मानः अपि तु न, भवविधिः जगताम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य किं भवति अपि तु न, वा अनीशः कुर्यात् तदा भुवनजनने कः परिकरः यतः कारणात् इमे मन्दास्त्वां प्रति संशेरते ॥ ६ ॥

अस्यार्थः–हे देवोत्तम ! अंगों सहित भी जो सब लोक ये क्या अजन्मा हैं अर्थात् इनका उपजानेवाला है, संसारके होनेकी विधि

जगत्के कर्ताको नहीं माननेसे क्या होसकती है अर्थात् नहीं होती है, अथवा विना ईश्वर जन्मका देनेवाला कहैं तो चौदहभुवनके उत्पन्न करनेकी सामग्री कौन कौनसी है जिस कारणसे ये मन्दमति आपके होनेमें संशय करते है आशय यह है कि, जगत् तुझसे ही है ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

अन्वयः—त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवम् इति प्रस्थाने प्रभिन्ने इदं परम् अदः पथ्यम् इति च रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणाम् एको गम्यः त्वम् असि पयसाम् अर्णवः इव ॥ ७ ॥

अस्यार्थः—तीनों वेद साङ्ख्यशास्त्र योगशास्त्र शैवमतावलंबी और वैष्णव इन अनेक मतोंसे जो तुम एक स्थान हो सो पृथक् पृथक् होनेसे अपने को सब बडा अच्छा और सुखदायी यही है यों कहते हैं यह अपनी अपनी रुचिकी विचित्रतासे, सूधे टेढे अनेक मार्गगामी मनुष्योंको एक आधार मिलनेको तुमही हो गंगादि सब नदियोंके जलोंको समुद्र जैसे ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।

सुरास्तांतामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितां
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे वरद ! महोक्षः खट्वाङ्गं परशुः अजिनं भस्म फणिनः कपालं च इति इयत् तव तन्त्रोपकरणं सुराः भवद्भ्रू-प्रणिहितां तां ताम् ऋद्धिं विदधति अहो यद्येवं तर्हि स्वयम् एव कथं न भुङ्क्ते स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा नहि भ्रमयति॥८॥

अस्यार्थः—हे वरद ! बूढा तो बैल खाटकी पाटी और नर-पिंजर फरसा मृगचर्म भस्म सर्प और कपाल इतनी यह आपकी संपदा है और आपकी भ्रुकुटीके प्रसादसे देवता ऐसी ऋद्धिसिद्धि भोगते हैं—तहां वादीका कथन है कि, यह बडा अचरज है जो ऐसा है तो आपही क्यों नहीं भोगें तहां कहै है कि, रे वादी ! सुन अपने स्वरूपमें रमण करनेवालेको विषय रूपी मृगतृष्णा नहीं भ्रमाती है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥९॥

अन्वयः—हे पुरमथन ! कश्चित् भवदर्शनानुयायी सकलम् इदं जगत् ध्रुवं गदति तु पुनः अपरः अध्रुवं गदति परः ध्रौव्या-ध्रौव्ये गदति एतस्मिन् समस्तेऽपि जगति व्यस्तविषये

सति अहं तूष्णींस्मित इव त्वां स्तुवन् जिह्रेमि यद्येवं तर्हि कथं स्तुतौ प्रवर्त्तसे सत्यं नन्वहो खलु इति निश्चयेन मुखरता न धृष्टा अपि तु धृष्टैव ॥ ९ ॥

अस्यार्थः—हे पुरमथन ! कोई एक आपके दर्शन पालनेवाला अर्थात् शिवमतानुयायी इस सम्पूर्ण जगत्को निश्चल अर्थात् अविनाशी कहते हैं और कोई चलायमान अर्थात् नाशवान् कहे है और इनसे बढकर कोई अविनाशी और नाशवान् भी कहते हैं इन सबही बौद्धादिकोंकी वाणी संसारके उलटे विषय कहने सुननेसे मैं उनसे अचम्भितसा आपकी स्तुति करते लज्जित होता हूँ जो ऐसा तो क्यों स्तुति करते हो ? यह सत्य है परंतु निश्चय जानो कि, मेरी वाचालता क्या ढीठ नहीं है वास्तवमें ढीठही है स्तुति किये विना नहीं मानती ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरु गृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥ १० ॥

अन्वयः—हे गिरिश ! अनिलस्कन्धवपुषः तव यत् एश्वर्यं तत् यत्नात् परिच्छेत्तुम् उपरि विरिंच्यः अधो हरिः यातौ अनलम् ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरु गृणद्भ्यां ताभ्यां स्वयं तस्थे हे भगवन् ! तव अनुवृत्तिः किं न फलति अपितु फलत्येव ॥ १० ॥

अस्यार्थः—हे गिरिश ! वायु पर्यन्त शाख जिसकी ऐसा जो देह आपका उसका जो ऐश्वर्य तिसको यत्नसे नापकर छोर लेने को ऊपर आकाशको ब्रह्मा और नीचे पातालमें विष्णु गये परन्तु वह न पाया तब हारकर भक्तिश्रद्धासे परिपूर्ण हो स्तुति करने लगे तभी उन दोनोंको आपही अपने मनसे मिले आश्चर्य यही है कि; हे भगवन् ! तुम्हारे स्मरणकी अनुवृत्ति अर्थात् सेवा क्या नहीं फलीभूत होती है अर्थात् होती ही है ॥ १० ॥

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरिव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे त्रिपुरहर ! दशास्यः यत् अयत्नात् अवैरिव्यतिकरं त्रिभुवनम् आसाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभृत तत् इदं शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् अस्ति ॥ ११ ॥

अस्यार्थः—हे त्रिपुरहर ! रावणने जो विना यत्न शत्रु रहित त्रिभुवनको पाकर अर्थात् सहजहीमें वैरी मिटाके संग्रामी खुजलीके परवश भुजाओंको धारण किया अर्थात् निष्कण्टक विचरा सो यह शीशरूपी कमलकी माला बनाकर आपके चरणकमलकी पूजा अचल भक्तिसे करनेका प्रताप है ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥ १२

अन्वयः—हे भगवन्! त्वदधिवसतौ कैलासे त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं बलात् विक्रमयतः अमुष्य रावणस्य पाताले प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत्, कस्मिन् सति? त्वयि अलसचलितांगुष्ठशिरसि सति ध्रुवम् इति निश्चयेन उपचितः खलः मुह्यति॥ १२॥

अस्यार्थः—हे भगवन्! आपके निवासस्थान कैलासमें आपहीकी सेवासे मिला है बल जिनको ऐसे भुजाओंके समूहसे पराक्रम कर रहा अर्थात् कैलासको उठा रहा है इस रावणको पातालमें भी स्थिरता न मिली. काहेसे कि, तुमने अलसहीमें अर्थात् सहजहीसे चलाई पैरके अंगूठेकी नोक अर्थात् अँगूठेकी नोकसे भुज दबे और खेदसे रोते हुएको स्थिरता न हुई यह बात ठीक है कि ओछकी बढवार हुई और वह इतराया परन्तु फल कैसा पाया जो बड़ा रोनेवाला नाम पाया॥ १२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्नकस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥ १३॥

अन्वयः—हे वरद ! परिजनावेधेयात्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः अपि सतीं सुत्रामणः ऋद्धिम् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् चित्रं न त्वयि शिरसः अवनतिः कस्यापि उन्नत्यै न भवति अपि तु सर्वेषां भवत्येव ॥ १३ ॥

अस्यार्थः—हे वरदायक ! अधीन कर लिये हैं त्रिभुवन जिसने ऐसा जो बाणासुर उसने बड़ीसे बडी भी इन्द्रकी समृद्धिको अपने वैभवसे नीचेकर दिखाई सो आपके चरणोंमें एकाग्रचित्त रहनेवालोंको यह अचंभा नहीं क्योंकि आपको मस्तक झुकानेवालोंमें किसीकी भी उन्नति क्या न हुई निश्चय है कि, सबहीकी होती है ॥ १३ ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे त्रिनयन ! अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुर कृपाविधेयस्य विषं संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः आसीत् सः किं श्रियं न कुरुते इति न अपि तु कुरुते एव अहो इति आश्चर्यम् भुवनभयभङ्गव्यसानिनः विकारः अपि श्लाघ्यः भवति ॥ १४ ॥

अस्यार्थः—हे त्रिलोचन ! असमय एकाएकी ब्रह्मांडका नाश होता जानि घबराये हुए देवता असुरोंके ऊपर कृपा करि विषपीने-

वाले जो तुम सो आपके कण्ठमें जो चिह्न हुआ है सो क्या शोभा नहीं करता अर्थात् करताही है. यह बड़े चमत्कारकी बात है कि, लोकभय तोडनेके व्यसनीका विकार भी अर्थात् लांछनभी स्तुतिके योग्य होता है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्त्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः॥ १५

अन्वयः—हे भगवन् ! यस्य स्मरस्य विशिखाः सदेवासुरनरे जगति नित्यम् असिद्धार्थाः क्वचिदपि नैव निवर्तन्ते हे ईश ! सः स्मरः इतरसुरसाधारणं त्वां पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् अहो युक्तम् एतत् वशिषु परिभवः पथ्यः न भवति ॥ १५ ॥

अस्यार्थः—हे भगवन् ! जिस कामदेवके बाणोंने सब देवता असुर मनुष्योंको जगत्में नित्यदिन अपना अर्थ साधे विना कभी न फिरे अर्थात् सबको जीता है हे ईश ! उस कामने और देवताओंके समान आपको भी जाना तौभी स्मरणके योग्य हुवा अर्थात् भस्म हुवा आपकी दृष्टिसे यह बात ठीकही है कि जितेन्द्रियका अनादर करना अच्छा नहीं होता ॥ १५ ॥

महीं पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भाम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! यदा त्वं जगद्रक्षायै नटसि तदा महीं पादाघातात् सहसा संशयपदं व्रजति विष्णोः पदं भ्राम्यद्-भुजपरिघरुग्णग्रहगणं भवति अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः दौस्थ्यं याति ननु इति निश्चयेन भवतो विभुता वामा एव॥१६॥

अस्यार्थः—हे भगवन् ! जब तुम जगतकी रक्षाके लिये नृत्य करते हो तब पृथ्वी पांवकी ठोकरसे शीघ्रही सन्देहमें होती है आकाशमें फिरता हस्तरूपी परिघको देख क्लेशित ग्रहोंका समूह होता है और जटाजूटकी रगड़से स्वर्ग वारंवार चल विचल होता है यही निश्चय है कि आपकी प्रभुता टेढी है जानी नहीं जाती ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः यः वारां प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन द्वीपाकारं जगत् जलधिवलयं कृतम् इत्यनेन एव धृतमहिम दिव्यं तव वपुः उन्नेयम् ॥ १७ ॥

अस्यार्थः—हे भगवन् ! आकाशमें फैला हुवा, तारागण रूपी झागसे शोभित जो जलोंका प्रवाह आपके शीशमें जलकी बूंदके समान छोटासा देखा गया तिसने द्वीपके तुल्य जगत्को समुद्ररूपी कंकडसे घेरलिया है इसीसे धृतमहिम धारी है महिमा जिसने ऐसा दिव्य आपका शरीर अनुमान करने योग्य है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥ १८

अन्वयः—हे भगवन् ! त्रिपुरतृणं दिधक्षोः तव अयं कः आडम्बरविधिः । कोऽसौ ? रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिः अगेन्द्रः धनुः रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शरः इति अहो युक्तम् एतत् खलु इति निश्चयेन विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः न परतन्त्राः ॥ १८ ॥

अस्यार्थः—हे भगवन्! त्रिपुररूपी तृणके भस्म करनेवाले आपके यह इतनी सामग्री क्यों चाहिये। कौनसी कि, रथ पृथ्वी सारथी ब्रह्मा हिमाचल धनुष पहिये चन्द्र सूर्य और चक्रपाणि भगवान् बाण यह बात योग्यही है कि, जो बनानेके योग्य पदार्थ हैं उनके साथ क्रीडा करती हुई समर्थोंकी बुद्धि पराये वश नहीं होती ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे त्रिपुरहर! हरिः कृष्णः तव पदयोः साहस्रं कमलबलिम् आधाय तस्मिन् सहस्रे एकोने सति निजं नेत्रकमलं यत् उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिं गतः सन् त्रयाणां जगतां रक्षायै जागर्ति ॥ १९ ॥

अस्यार्थः—हे त्रिपुरहर! विष्णु भगवान् आपके चरणोंके सहस्र कमल ले पूजनको बैठे तिस समय सहस्रमें एक घटा तब अपना एक नेत्रकमल उखाड सहस्र पूरेकर पूजा कीनी यही जो उत्कट भक्ति सो चक्रस्वरूप होकर त्रिलोकीकी रक्षाके हेतु विद्यमान है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।

अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! जनः श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा पुनः क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं त्वां संप्रेक्ष्य कर्मसु दृढपरिकरः वर्तते कुतः यतः क्रतौ सुप्ते सति त्वं जाग्रत् असि अतः क्रतुमतां प्रध्वस्तं कर्म पुरुषाराधनम् ऋते क्व फलति अपि तु न फलति इत्यर्थः ॥ २० ॥

अस्यार्थः—हे भगवन् ! मनुष्य वेदमें श्रद्धा बांधिकर फिर यज्ञके फलदाता स्वरूप आपको देख कर्मोंमें दृढ विश्वास कर वर्ते हैं क्योंकि जिससे यज्ञके सोवनेमें भी आप जागते हो इसी कारण यज्ञ करनेवालोंको कर्मकी हीनतामें कर्म पुरुषकी आराधना विना फल कहीं देता है ? अर्थात् नहीं देता इससे शिवसेवाही मुख्य है ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुषु फलदानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥ २१ ॥

अन्वयः—हे शरणद ! दक्षः स्वयं क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः क्रतुपतिः ऋषीणाम् आर्त्विज्यं सुरगणाः सदस्याः

एवंसामग्रीकस्यापि दक्षस्य क्रतुषु फलदानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशो जातः ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुर यदा भवति तदा मखाः हि अभिचाराय ॥ २१ ॥

अस्यार्थः—हे शरणागतप्रतिपालक ! दक्षप्रजापति आपही यज्ञक्रियामें चतुर हैं और देहधारियोंका स्वामी ऐसा यजमान है ऋषिलोग ऋत्विज होम करनेवाले और देवता सभासद ऐसी सामग्री होनेपर भी यज्ञफलदानी आपके अनुराग विना दक्षका यज्ञ विध्वंस हुआ सो यह निश्चय है कि, कर्ताकी श्रद्धा विना जो होय तौ मख उलटेही फलके हेतु है ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥ २२॥

अन्वयः—हे नाथ ! धनुष्पाणेः ते मृगव्याधरभसः अद्यापि अमुं प्रजापतिं न त्यजति कथंभूतं प्रजापतिं प्रसभं रोहिद्भूतां स्वां दुहितरम् ऋष्यस्य वपुषा रिरमयिषुं गतं पुनः कथंभूतं प्रजानाथम् अभिकं पुनः कथंभूतं सपत्राकृतं पुनः कथंभूतं दिवमपि यातं तथापि त्रसन्तम् ॥ २२ ॥

अस्यार्थः—हे नाथ ! धनुष्यधारी आपका मृगव्याधका वेग अर्थात् साहस अबतक इस ब्रह्माको नहीं छोडता कैसा है यह प्रजा-

पति ? बलात्कारसे मृगी होगई निजपुत्रीपै मृगदेह धरि संगकी इच्छा है जिसके सो कुकर्मको धाया फिर कैसा है कि, प्रजाओंका स्वामी कामी है फिर कैसा है व्याकुल है और फिर कैसी दशा है ब्रह्माकी कि स्वर्गको भी गया तो भी मयसे न छुटा, आशय यह है कि, कुकर्मी कोई हो अपने कियेका फल पावेगा ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्द्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे पुरमथन ! हे यमनिरत ! स्वलावण्याशंसा देवी धृतधनुषं पुष्पायुधम् अपि अह्नाय तृणवत् पुरः प्लुष्टं यद्यपि दृष्ट्वा अपि देहार्द्धघटनात् त्वाम् अद्धा स्त्रैणम् अवैति बत अहो हे वरद ! युवतयः मुग्धाः ॥ २३ ॥

अस्यार्थः—हे त्रिपुरदाहक ! हे यमनियमादिअष्टांगयोगपरायण ! देवी उमा अपनी सुन्दरताकी आशासे धरा है धनुष जिसने ऐसे कामदेवको तुरंत ही तिनकेकी भांति अपने आगे जो कि, भस्म हुवा देखकरभी अर्द्धांगी धारण करनेसे आपको साक्षात् स्त्रीलंपट जाने है यह बडी हँसीकी बात है हे वरद ! बहुधा स्त्रीजाति भोली होती है॥२३॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥ २४ ॥

हे स्मरहर! श्मशानेषु आक्रीडा तथा पिशाचाः सहचराः तथा चिताभस्मालेपः तथा अपीति निश्चयेन नृकरोटी स्रक् एषः ते परिकरः हे वरद! अखिलम् अमंगल्यं तव शीलं भवतु नाम तथापि स्मर्तॄणां परमं मंगलम् असि ॥ २४ ॥

अस्यार्थः—हे मदनान्तक! श्मशानभूमि तौ खेलका स्थान और पिशाच हैं साथके खिलाडी तैसे ही चिता भस्मका लेपन और वैसेही मनुष्यके कपालकी माला यह परिकर अर्थात् शृङ्गार सामग्री हे वरद! सम्पूर्ण अशुभसूचक आपका बाना यह जैसा है वैसा भलेही हो तोभी आपके स्मरण करनेवाले जनोंको आप अधिकतर मंगलरूप हो ॥२४॥

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥ २५

अन्वयः—हे भगवन् ! आत्तमरुतः प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः यमिनः प्रत्यक् मनः चित्ते सविधं यथा भवति तथा अवधाय अन्तः मध्ये यत् किंचित् अनिर्वचनीयं तत्त्वम् आलोक्य आह्लादं दधति यथा अमृतमये ह्रदे इव निमज्ज्य किल इति निश्चयेन भवान् तत्तत्त्वम् असि ॥ २५ ॥

अस्यार्थः—हे भगवन् ! रोका है श्वास जिन्होंने और रोमांच हुआ जिनके और प्रेमजलसे भरे हैं नेत्राम्बुज जिनके ऐसे जो योगीश्वर तिन्होंने मनको आत्मामें लगाकर जैसे हो वैसेही धारण करि भीतर ही हृदयके जो कुछ वाणीसे न कहा जाय उस तत्त्वको देख कर आह्लादमय हुवे जैसे अमृतमय सरोवरमें स्नान करि प्रसन्न होय निश्चयही वह तत्त्व आपही हैं ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥ २६॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वम् अर्कः असि त्वं सोमः असि त्वं पवनः असि त्वं हुतवहः असि त्वं आपः त्वं व्योम असि उ इति वितर्के त्वं धरणिः असि त्वम् आत्मा असि इति परिणताः परिपक्वबुद्धयः त्वयि एवं परिच्छिन्नां गिरं बिभ्रतु नाम वयं तु इह यत् त्वं न असि हि इति निश्चयेन तत् तत्त्वं न विद्मः॥२६॥

अस्यार्थः—हे समर्थ ! तुम सूर्य हो और चन्द्रमा हो और तुमही पवन अग्नि जल आकाश पृथिवी और आत्माहो विचारमें दृढ बुद्धि है जिनको वे आपके विषे इस प्रकार पृथक्वाणी कहा करो परन्तु हम तौ जहां तुम नहीं हो ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं जानते ॥२६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्॥२७॥

अन्वयः—हे शरणद ! त्रयीं तिस्रो वृत्तीः त्रिभुवनम् अथो त्रीन् सुरान् अपि त्रिभिः अकाराद्यैः वर्णैः अभिदधत् पुनः तीर्णविकृति तुरीयं ते धाम अणुभिर्ध्वनिभिः अवरुन्धानं पुनः समस्तं व्यस्तम् एतादृशम् ओम् इति पदं त्वां गृणाति ॥२७॥

अस्यार्थः—हे शरणागतपालक ! त्रिभुवन तीन वृत्ति उदात्त अनुदात्त स्वरित और तीनों देव ब्रह्मा विष्णु महेश और तीनों अकारादि वर्ण अ उ म् सबको धारण किये आपके अधिकारी चौथे स्थानको मन्दमन्द स्वरोंसे ग्रहण करता हुवा फिर मिला और पृथक् २ ऐसा जो ॐकार पद सो आपकी स्तुति करता है ॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मिभवते ॥२८

अन्वयः—हे देव ! भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः अथ उग्रः सह महान् तथा भीमेशानो इति यत् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् श्रुतिः अपि अस्मै धाम्ने प्रियाय प्रविचरति एवंरूपाय भवते प्राणीहितनमस्योऽस्मि ॥ २८ ॥

अस्यार्थः—हे देव ! भव शर्व रुद्र पशुपति उग्र महान् भीम ईशान यह जो नामाष्टक इसमें वेदभी इस तेजोमय स्वरूपकी प्रसन्न ताके हेतु स्तुति करै है ऐसे उक्त नामस्वरूप जो आप तिनको किया है नमस्कार जिसने ऐसा मैं हूं पुष्पदन्त नाम गन्धर्वाचार्य ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे प्रियदव ! नेदिष्ठाय नमः दविष्ठाय नमः हे स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय तुभ्यं नमः महिष्ठाय नमः हे त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय नमः यविष्ठाय नमः हे भगवन् ! सर्वस्मै तुभ्यं नमः तत् इदमिति वाक्योपसंहारं शर्वाय नमः ॥ २९ ॥

अस्यार्थः—हे अभक्तोंके आनन्ददाहक ! निकटवर्ती जो तुम सो आपको प्रणाम है और दूरवर्ती जो आप सो तुमको नमस्कार है । हे कामारि ! अतिसूक्ष्मरूप तुम्हें दण्डवत् है अतिस्थूलरूप जो आप तिनके अर्थ प्रणाम है । हे त्रिनयन ! वृद्धरूप तुमको नमस्कार है और तरुणरूप जो तुमको नमस्कार है । हे भगवन् ! सर्वस्वरूपी आपको नमस्कार है तत् शब्दका अर्थ वाक्य समाप्तिके विषे है यहां शर्वाय नमः इससे ॥ २९ ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोपत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे भगवन्! विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमोनमः तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमोनमः सत्त्वोत्पत्तौ जनसुखकृते मृडाय नमोनमः प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः॥३०

अस्यार्थः—हे भगवन् ! संसारकी उत्पत्ति समय अधिक रजोगुण सहित जो भवरूप आप तिनके अर्थ नमस्कार है और जगत्के नाशके समय प्रबल तमोगुणसहित जो हररूप तिनके अर्थ नमस्कार है और सत्त्वगुणयुक्त होकर मनुष्योंको सुख देनेवाले सुखरूप आपको नमस्कार है और सर्वोत्तम पदमें वर्तमान त्रिगुणते परे कल्याणस्वरूप आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३० ॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे वरद ! क्लेशवश्यं कृशपरिणति इदं चेतः क्व च पुनः गुणसीमोल्लङ्घिनी तव शश्वत् ऋद्धिः क्व इति विचार्य चकितं मां भक्तिः अमन्दीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपुष्पोपहारम् आधात् ॥ ३१ ॥

अस्यार्थः—हे वरदायक ! क्लशके वश और निर्बल परिणाम जिसका ऐसा तो यह चित्त कहां और फिर गुणोंकी सीमाका उल्लंघन करनेवाली आपकी निरन्तर बहनेवाली यह महिमा कहां इस विचारसे मुझको भक्तिने चकित होता देख प्रवीणकरके तुम्हारे चरणोंका पूजन वाणीरूपी पुष्पोंकी सामग्रीसे करवाया ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्व्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे ईश ! तव गुणलेखनार्थं सिन्धुपात्रे असितगिरिसमं कज्जलं स्यात् तथा सुरतरुवरशाखा लेखनी स्यात् यदि शारदा गृहीत्वा सर्वकालं लिखति तदपि तव गुणानां पारं न याति॥ ३२॥

अस्यार्थः—हे स्वामी ! आपके संपूर्ण गुण लिखनेको यह सामग्री समुद्र पात्रमें श्यामगिरिके समान काजल होय और कल्पवृक्षकी शाखा अर्थात् डालीकी लेखनी जो शारदा लेकर सर्वकाल लिखै तौ भी आपके गुणोंका पार नहीं पावै ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य अलघुवृत्तैः रुचिरम् एतत् स्तोत्रं चकार ॥ ३३ ॥

अस्यार्थः—असुर सुर और मुनीश्वरोंसे पूजित है चन्द्रमौलि कहिये चन्द्रमा है जिनके मस्तकपर ऐसे जो महादेव औ रगुंफी गई है जिनके गुणोंकी महिमा ऐसे जो निर्गुणस्वरूप शिवजी उनका महास्तोत्र जो मनोहर और बडे बडे श्लोकोंसे सकलगुणशोभित श्रीपुष्पदन्ताचार्यजीने रचा अर्थात् श्रीमुखसे निवेदन किया है ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यः सदात्मा
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यः पुमान् शुद्धचित्तः सन् अहरहः परमभक्त्या धूर्जटेः अनवद्यम् एतत् स्तोत्रं पठति सः शिवलोके रुद्रतुल्यः सदात्मा प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च भवति ॥ ३४ ॥

अस्यार्थः—धूर्जटि जो महादेवजी उनके इस स्तोत्रको परमभक्ति और शुद्ध अंतःकरणसे जो मनुष्य पाठ करै वह शिवलोकमें शिवसमान होय है और यहां शुद्ध अंतःकरण और बहु कीर्तिमान् धनवान् पुत्रवान् और आयुष्मान् होता है ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होमयज्ञादिकाः क्रियाः ।
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होमयज्ञादिकाः क्रियाः महिम्नः स्तवपाठस्य षोडशीं कलां न अर्हन्ति ॥ ३५ ॥

अस्यार्थः—दीक्षा कहिये महाकर्माधिकार और दान और तप और होम यज्ञ आदि क्रियाओंसे जितने फल होते हैं वे सब फल आपके इस महिम्न स्तोत्रके पाठका जो फल होता है उसके सोलहवें भागके बराबर नहीं है ॥ ३५ ॥

समाप्तं तदिदं स्तोत्रं सर्वमीश्वरवर्णनम्।
अनूपमं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—सर्वम् ईश्वरवर्णनं तत् इदं स्तोत्रं समाप्तं कथंभूतम् ? अनूपमं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ॥ ३६ ॥

अस्यार्थः—प्रसिद्ध जो यह ३२ श्लोकोंका स्तोत्र सो पूर्ण हुआ जिसको शिवजीका स्तोत्र कहते हैं जिसमें सब ईश्वरहीका वर्णन है, कैसा है यह स्तोत्र कि, जिसकी दूसरी उपमा नहीं और मनोहर और पुण्य स्वरूप और गन्धर्वाचार्य पुष्पदन्तका कहा हुआ है ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम॥ ३७॥

अन्वयः—महेशात् अपरः देवः न, महिम्नः स्तुतिः अपरा न, अघोरात् मन्त्रः अपरः न, गुरोः परं तत्त्वं नास्ति ॥ ३७ ॥

अस्यार्थः—महादेवजीसे परे कोई और देवता नहीं। और महिम्नस्तोत्रसे बढकर कोई स्तुति नहीं और अघोरमन्त्रसे बडा कोई मन्त्र नहीं श्रीगुरुसे परे कोई तत्त्वभी नहीं ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः।

स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—शशिधरवरमौलेः देवदेवस्य दासः कुसुमदशन नामा सर्वगन्धर्वराजः आसीदिति शेषः सः खलु अस्य रोषात् एव निजमहिम्नो भ्रष्टः सन् दिव्यदिव्यम् इदं महिम्नः स्तवनम् अकार्षीत् ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः—चन्द्रमा धारण किये सुन्दर है मस्तक जिनका ऐसे जो देवोंके देव महादेव उनका दास सब गन्धर्वोंका राजा जो कुसुमदशन कहे पुष्पदन्ताचार्य वह सो शिवके क्रोधसे निज महिमासे भ्रष्ट हुवा था उसने यह उत्तमोत्तम महिमाका स्तोत्र बनाया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः सन् सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पुष्पदन्तप्रणीतम् अमोघम् इदं स्तवनं यदि पठति तर्हि किन्नरैः स्तूयमानः सन् शिवसमीपं व्रजति ॥ ३९ ॥

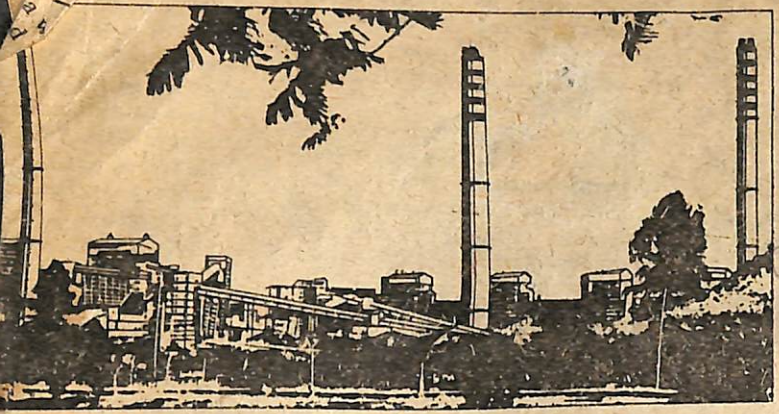
अस्यार्थः—इन्द्रादिक देवता और मुनीश्वरोंसे पूज्य और स्वर्ग तथा मोक्षका एकही मूल कारण और अमोघ फल अर्थात् जिसके पाठका

got 41.50 tim

0 Cassia Rd

CHANDIGARH

to reach within 15 days of the advertisements.



NTPC

HE GREAT